षड्दर्शन

दर्शन शब्द का अर्थ दृष्टि या देखना, 'जिसके द्वारा देखा जाय' या 'जिसमें देखा जाय' होगा। दर्शन शब्द का शब्दार्थ केवल देखना या सामान्य देखना ही नहीं है। इसीलिए पाणिनि ने धात्वर्थ में 'प्रेक्षण' शब्द का प्रयोग किया है। ऋग्वेद के अत्यन्त प्राचीन युग से ही भारतीय विचारों में द्विविध प्रवृत्ति और द्विविध लक्ष्य के दर्शन हमें होते हैं। प्रथम प्रवृत्ति प्रतिभा या प्रज्ञामूलक है तथा द्वितीय प्रवृत्ति तर्कमूलक है। वेदों में जो आधार तत्व बीज रूप में बिखरे दिखाई पड़ते थे, वे ब्राह्मणों में आकर कुछ उभरे। आरण्यकों में ये अंकुरित होकर उपनिषदों में खूब पल्लवित हुए। दर्शनों का विकास जो हमें उपनिषदों में हमें दृष्टिगोचर होता है, आलोचकों ने उसका श्रीगणेश लगभग दौ सौ वर्ष ईसा पूर्व स्थिर किया है। महात्मा बुद्ध से यह प्राचीन हैं। इतना ही नहीं विद्वानों ने सांख्य, योग और मीमांसा को भी बुद्ध से प्राचीन माना है।

वैदिक दर्शनों में **षड्दर्शन** (छः दर्शन) अधिक प्रसिद्ध और प्राचीन हैं। ये छः दर्शन ये हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त। गीता का कर्मवाद भी इनके समकालीन है। षडदर्शनों को 'आस्तिक दर्शन' कहा जाता है। वे वेद की सत्ता को मानते हैं। हिन्दू दार्शनिक परम्परा में विभिन्न प्रकार के आस्तिक दर्शनों के अलावा अनीश्वरवादी और भौतिकवादी दार्शनिक परम्पराएँ भी विद्यमान रहीं हैं।

न्याय दर्शन[

महर्षि गौतम रचित इस दर्शन में पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन है। पदार्थों के तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति होती है। फिर अशुभ कर्मो में प्रवृत्त न होना, मोह से मुक्ति एवं दुखों से निवृत्ति होती है। इसमें परमात्मा को सृष्टिकर्ता, निराकार, सर्वव्यापक और जीवात्मा को शरीर से अलग एवं प्रकृति को अचेतन तथा सृष्टि का उपादान कारण माना गया है और स्पष्ट रूप से त्रैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। इसके अलावा इसमें न्याय की परिभाषा के अनुसार न्याय करने की पद्धति तथा उसमें जय-पराजय के कारणों का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। सत्य की खोज के लिए सोलह तत्व है। उन तत्वों के द्वारा किसी भी पदार्थ की सत्यता (वास्तविकता) का पता किया जा सकता है। इन सबका वर्णन न्याय दर्शन में है और इस प्रकार इस दर्शन शास्त्रको तर्क करने का व्याकरण कह सकते हैं।

वैशेषिक दर्शन

महर्षि कणाद रचित इस दर्शन में धर्म के सच्चे स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसमें सांसारिक उन्नति तथा निश्श्रेय सिद्धि के साधन को धर्म माना गया है। अत: मानव के कल्याण हेतु धर्म का अनुष्ठान करना परमावश्यक होता है। इस दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छ: पदार्थों के साधर्म्य तथा वैधर्म्य के तत्वाधान से मोक्ष प्राप्ति मानी जाती है। ये तत्व है-द्रव्य, गुण, कर्म, समन्वय,विशेष और अभाव।
वैसे वैशेषिक दर्शन बहुत कुछ न्याय दर्शन के समरूप है और इसका लक्ष्य जीवन में सांसारिक वासनाओं को त्याग कर सुख प्राप्त करना और ईश्वर के गंभीर ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा अंतत: मोक्ष प्राप्त करना है। वैशेषिक दर्शन में पदार्थों का निरूपण निम्नलिखित रूप से हुआ है:
जल: यह शीतल स्पर्श वाला पदार्थ है।
तेज: उष्ण स्पर्श वाला गुण है।
काल: सारे कायो की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश में निमित्त होता है।

आत्मा: इसकी पहचान चैतन्य-ज्ञान है।
मन: यह मनुष्य क अभ्यन्तर में सुख-दु:ख आदिके ज्ञान का साधन है।
पंचभूत: पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश
पंच इन्द्रिय: घ्राण, रसना, नेत्र, त्वचा और श्रोत्र
पंच-विषय: गंध,रस,रूप,स्पर्श तथा शब्द
बुध्दि: ये ज्ञान है और केवल आत्मा का गुण है।

सांख्य दर्शन

इस दर्शन के रचयिता महर्षि कपिल हैं। सांख्य दर्शन प्रकृति से सृष्टि रचना और संहार के क्रम को विशेष रूप से मानता है पुरुष चेतन तत्व है, तो प्रकृति अचेतन। सांख्य सर्वाधिक पौराणिक दर्शन माना जाता है। भारतीय समाज पर इसका इतना व्यापक प्रभाव हो चुका था कि महाभारत (श्रीमद्भगवद्गीता),विभिन्न पुराणों, उपनिषदों, चरक संहिता और मनु संहिता में सांख्य के विशिष्ट उल्लेख मिलते है। प्रकृति से लेकर स्थुल-भूत पर्यन्त सारे तत्वों की संख्या की गणना किये जाने से इसे सांख्य दर्शन कहते है। सांख्य सांख्या द्योतक है। इस शास्त्र का नाम सांख्य दर्शन इसलिए पड़ा कि इसमें २५ तत्व या सत्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। पुरूष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शक्ति की जननी है। त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्व, राजस्व तथा तमस की उत्पत्ति होती है। प्रकृति की अविकसित अवस्था में यह गुण निष्क्रिय होते है पर परमात्मा के तेज सृष्टि के उदय की प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही प्रकृति के तीन गुणो के बीच का समेकित संतुलन टूट जाता है। सांख्य के अनुसार २४ मूल तत्व होते है जिसमें प्रकृति और पुरूष पच्चीसवां है। प्रकृति मूल रूप में सत्व,रजस्,रजस् तमस की साम्यावस्था को कहते है। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और इस अवस्था को महत् कहते है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। अहंकार प्रकृति का दूसरा परिणाम है।
तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्राएँ (रूप, रस) रस,गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है।
सांख्य का उद्देश्य तीनो प्रकार के दु:खों की निवृत्ति करना है। तीन दु:ख है।
आधिभैतिक- यह मनुष्य को होने वाली शारीरिक दु:ख है जैसे बीमारी, अपाहिज होना इत्यादि।
आधिदैविक- यह देवी प्रकोपों द्वारा होने वाले दु:ख है जैसे बाढ़, आंधी, तूफान, भूकंप इत्यादि के प्रकोप ।
आध्यात्मिक- यह दु:ख सीधे मनुष्य की आत्मा को होते हैं जैसे कि कोई मनुष्य शारीरिक व दैविक दु:खों के होने पर भी दुखी होता है। उदाहरणार्थ-कोई अपनी संतान अपना माता-पिता के बिछुड़ने पर दु:खी होता है अथवा कोई अपने समाज की अवस्था को देखकर दु:खी होता है।

योग दर्शन

योग की प्रक्रिया विश्व के बहुत से देशों में प्रचलित है। अधिकांशत: यह आसनों के रूप में जानी जाती है। कहीं-कहीं प्राणायाम भी प्रचलित है। यह आसन इत्यादि योग दर्शन का बहुत ही छोटा भाग है।
इस दर्शन की व्यवहारिक और आध्यात्मिक उपयोगिता सर्वमान्य है क्योकि योग के आसन एवं प्राणायाम का मनुष्य के शरीर एवं उसके प्राणों को बलवान एवं स्वस्थ्य बनाने में सक्षम योगदान रहा है। इस दर्शन के

रचयिता महर्षि पतंजलि हैं। इसमें ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। पश्रमेश्वर के समीप अनुभव करते हुए मोक्ष प्राप्त करने के प्रयास को योग कहा जाता है। योग सत्य-प्राप्ति का उपाय है। इस सिद्धांत के अनुसार परमात्मा का ध्यान आंतरिक होता है। जब तक हमारी इंद्रियां बहिर्गामी हैं, तब तक ध्यान कदापि संभव नहीं है। अपने पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है यही योग है। इसे प्राप्त करने का उपाय योगदर्शन में बताया है। अष्टांग योग क्लेशों से मुक्ति पाने व चित्त को समहित करने के लिए योग के ८ अंगों का अभ्यास है। इस अभ्यास की अवधि ८ भागों में विभक्त है- १. यम, २. नियम, ३. शासन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि। मुख्यत: योग-क्रियाओं का लक्ष्य आत्मा पर नियंत्रण है।

मीमांसा दर्शन]

मीमांसासूत्र इस दर्शन का मूल ग्रन्थ है जिसके रचयिता महर्षि जैमिनि हैं। मीमांसा शब्द का अर्थ (पाणिनि के अनुसार) जिज्ञासा है। जिज्ञासा अर्थात् जानने की लालसा। मनुष्य जब इस संसार में अवतरित हुआ उसकी प्रथम जिज्ञासा यही रही थी कि वह क्या करे वेद के प्रारम्भ में ही यज्ञ की महिमा का वर्णन है। वैदिक परिपाटीमें यज्ञ का अर्थ देव-यज्ञ ही नहीं है, वरन् इसमें मनुष्य के प्रत्येक प्रकार के कायो का समावेश हो जाता है। बढ़ई जब वृक्ष की लकड़ी से कुर्सी अथवा मेज बनाता है तो वह यज्ञ ही करता है। वृक्ष का तना जो मूल रूप में ईधन के अतिरिक्त, किसी भी उपयोगी काम का नहीं होता, उसे बढ़ई ने उपकारी रूप देकर मानव का कल्याण किया है। अत: बढ़ई का कार्य यज्ञरूप ही है। इस दर्शन में वैदिक यज्ञों में मंत्रों का विनियोग तथा यज्ञों की प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है। यदि योग दर्शन अंतःकरण शुद्धि का उपाय बताता है, तो मीमांसा दर्शन मानव के पारिवारिक जीवन से राष्ट्रीय जीवन तक के कर्तव्यों और अकर्तव्यों का वर्णन करता है। धर्म के लिए महर्षि जैमिनि ने वेद को परम प्रमाण माना है

वेदान्त दर्शन

वेदान्त का अर्थ है वेदों का अन्तिम सिद्धान्त। महर्षि व्यास द्वारा रचित **ब्रह्मसूत्र** इस दर्शन का मूल ग्रन्थ है। इस दर्शन को **उत्तर मीमांसा** भी कहते हैं। जब मनुष्य जीवन-यापन करने लगता है तो उसके मन में दूसरी जिज्ञासा जो उठती है, वह है ब्रह्य -जिज्ञासा। ब्रह्यसूत्र का प्रथम सूत्र ही है- अथातो ब्रह्यजिज्ञासा।। ब्रह्य के जानने की लालसा। इस (जगत्) का कारण क्या है,? हम कहाँ से उत्पन्न है? कहाँ स्थित है? कैसे स्थित है? यह सुख-दु:ख क्यों होता है? इत्यादि। इसमें बताया गया है कि तीन मूल पदार्थ है-प्रकृति,जीवात्मा और परमात्मा। तीनों अनादि है। इनका आदि-अन्त नहीं। प्रकृति जो जगत् का उपादान कारण है, परमाणुरूप है जो त्रिट (तीन शक्तियो-सत्व, राजस् और तमस् का गुट) है। इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म जगत का कर्ता-धर्ता व संहारकर्ता होने से जगत का निमित्त कारण है। ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, आनंदमय, नित्य, अनादि, अनंतादि गुण विशिष्ट शाश्वत सत्ता है। साथ ही जन्म मरण आदि क्लेशों से रहित और निराकार भी है। आगे चलकर वेदान्त के अनेकानेक सम्प्रदाय अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि बने।